IOSR Journal of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 24, Issue 1, Version 1 (January. 2019) 82-88
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

समकालीन हिंदी कविता में किसान विमर्श

BIVA KUMARI

सारांश-
भारत कृषि प्रधान देश है। यहां की बहुसख्यंक आबादी कृषि पर निर्भर करती है। कृषि हमारी संजीवनी शक्ति है। कृषि हमारी संस्कृति, अर्थव्यवस्था और संप्रभुता की रीढ़ है। किसी भी राष्ट्र के विकास में किसानों की भूमिका अत्यंतमहत्वपूर्ण रही है। किसान को अन्नदाता कहा जाता है क्योंकि वह हमारे जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता भोजन को पूरा करता है। लेकिन सबका पेट भरने वाला किसान स्वयं अन्न के लिए तरसता है। दिनभर परिश्रम करने के बाद भी दो वक्त भरपेट भोजन तक उसे मयस्सर नहीं होता। पुलिस, पटवारी, महाजन- सबके-सब उसे चूसने के लिए बैठे हैं। उनके परिश्रम का लाभ बिचौलिये ले लेते हैं। किसानों को उनके परिश्रम का लाभ नहीं मिल पाता। सरकार की तरफ से भी किसानों की सुरक्षा के लिए कोई ठोस- कड़े नियम नहीं बनाये गये हैं। फलत: किसानों की स्थिति दिन-पर-दिन खराब होती जा रही है। आज वे आत्महत्या कर रहे हैं, जो किसी भी देश के लिए चिंता का विषय है। किसान को उसकी जमीन से दूर कर देना मात्र खेती से दूर करनानहीं है, बल्कि उसे उसकी कृषि, संस्कृति, उसकी परंपरा, उसकी विरासत, उसकी अस्मिता, उसके सपनों एवं उसके अपनों से दूर कर देना भी है।

मुख्यशब्द–
संप्रभुता, रीढ़, अन्नदाता, बिचौलिया, अर्थव्यवस्था, हरितक्रांति, कॉरपोरेट फार्मिंग, पेटेंट कानून, सब्सिडी, बहुराष्ट्रीय कंपनी, वित्तीय संस्थाएं।

अध्ययन का उद्देश्य–
इस लेख को पढ़कर हम समझ सकेंगेकि किसानों का हमारे जीवन में कितना महत्वहै।साथ ही, किसानों के दु:खऔर पीडा से भी अवगत हो सकेंगे।

I. प्रस्तावना

कृषि हमारी संस्कृति, अर्थव्यवस्था और संप्रभुता की रीढ़ है। मानव-समाज में कृषि का स्थान तीन कारणों से महत्वपूर्ण रहा है, रहेगा। पहला कारण वह है जो अधिकांशत: चर्चा में आता है। तमाम औद्योगिकीककरण और विकास के बावजूद आज भी मानव-जाति का बहुत बड़ा हिस्सा गॉवों में रहता है और अपनी जीविका के लिए खेती पशुपालन आदि पर आश्रित है। भारत समेत दुनिया के अनेक देशों में आज भी रोजगार का सबसे बड़ा स्रोत खेती और पशुपालन ही है। किंतु खेती का महत्व महज इस सांख्यिकीय कारण से ही नहीं है। इसके अन्य महत्वपूर्ण एवं बुनियादी कारण है। दूसरा कारण यह है कि खेती से ही मनुष्य की सबसे बुनियादी आवश्यकता- भोजन की पूर्ति होती है। अभी तक खाद्यानों का कोई औद्योगिक या गैर-खेती विकल्प आधुनिक टैक्नोलॉजी नहीं ढूंढ़ पाई है और भविष्य में इसकी संभावना भी नहीं है। इसलिए जब स्वाभिमानी और जागरूक समाज या राष्ट्र खाद्य स्वावलंबन की रणनीति बनाते हैं या अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति में खाद्य आपूर्ति को एक हथियार बनाया जाता है, तो कृषि का महत्व अपने-आप स्पष्ट हो जाता है। कृषि के साथ तीसरी विशेषता यह है कि मनुष्य समाज की आर्थिक गतिविधियों में यही ऐसी गतिविधि है, जिसमें वास्तव में उत्पादन एवं नया सृजन होता है। प्रकृति की मदद से किसान बीज के एक दाने से बीस से तीस दाने तक पैदा कर लेता है। उद्योगों, सेवाओं आदि अन्य आर्थिक गतिविधियों में प्राय: कोई नया उत्पादन नहीं होता है, पहले से उत्पादित पदार्थों (कच्चा माल) का रूप परिवर्तन होता है। ऊर्जा या कैलोरी की दृष्टि से देखें, तो जहां अन्य आर्थिक गतिविधियों में ऊर्जा की खपत होती है, कृषि या पशुपालन में ऊर्जा या कैलोरी का सृजन होता है। कृषि में प्रकृति मानव श्रम के साथ मिलकर वास्तव में सृजन करती है। ओमप्रकाश मिश्र 'किसान और पृथ्वी' कविता में लिखते हैं-"एक अनपढ़, उजड्ड किसान/जिसके पास न विद्या, न

वैभव/न दुनिया से भिड़ने की ताकत/मात्र हल, बैल, चंद बीज लेकर/ निकल पड़ता अकेला/परती जमीन तोड़ने/सृष्टि का निर्माण करने/हल बैलों का स्पर्श पा/सदियों से थमी जमीन/दरकने लगती सूखी लकड़ी-सी/नरकुलों के झुंड, कंटीली झाड़ियां/गायब होने लगती/जैसे प्रतीक्षा थी उन्हें आदिकाल से/काले-कलूटे शरीर/बैलों की पदचाप/.../जानता है एक किसान/बड़ी ममतालु है मां पृथ्वी/एक दाने को/सैकड़ों दानों में तब्दील कर/सौंपती है बेटों की मुट्ठियों में।"[1] कृषि हमारी संजीवनी शक्ति है। वह हमारी स्वतंत्रता की प्राणवायु है। सच कहा जाये, तो वह हमारी समूची अर्थव्यवस्था का नाड़ीतंत्र है। यदि उसके ऊपर किसी भी तरह की कोई आंच आती है, तो यह हमारे लिए खतरे और गंभीर चिंता की बात है।

II. विषय विस्तार

ब्रिटिश शासन के दौरान खेतीबाड़ी के क्षेत्र में ऐसी नीतियों का बलात प्रवेश होता गया कि भारत के करोड़ों लोग अन्न के एक-एक दाने के लिए मोहताज होते गये। जिस देश को सोने की चिड़िया कहा जाता था, जहां दूध-घी की नदियां बहती थीं, वहां दुर्भिक्षों का दौर चल पड़ा। महामारी के चपेट में आकर लोग दम तोड़ने लगे एवं भुखमरी-गरीबी-बेकारी-गुलामी के तांडव से त्राहि-त्राहि मच गई थी। ऐसा मारक दंश था औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का। आजादी मिलने के बाद देश के सामने बहुत बड़ा संकट यह था कि कैसे करोड़ों के पेट भरे जायें। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद शक्ति के रूप में उभर चुके अमरीका ने पी.एल. 480 के तहत भारत की भूखी जनता के मुंह में निवाला डालने के नाम पर उदारतापूर्वक सहायता देने का ढोंग किया। उस दौर में अन्न का व्यापार करने वाली कारगिल जैसी कम्पनियों की बन आई। उन्होंने बेहिसाब फालतू पडे घटिया अमरीकी अनाज का जमकर निर्यात किया। पी.एल.480 के अंतर्गत सहायता लेने वाले देशों की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के बजाय कारगिल जैसी कम्पनियों ने उन्हें अपनी गिरफ्त में लेना चाहा और व्यापार के हथियार से उन्हें परावलंबी बनाने की कुचाल चली। 1963 तक पी.एल. 480 के अंतर्गत अकेले कारगिल और कॉण्टीनेण्टन ग्रेन ने 2 अरब डॉलर तक के अनाजों की बिक्री की थी। इस व्यवस्था के अंतर्गत सहायता लेने वाले 10 में से 7 देश अमरीकी अनाज के सबसे बड़े ग्राहक और उपभोक्ता बन बैठे।

भारतीय कृषि के निकट इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है 1967-68 में शुरू हुई हरित क्रांति। इसकी मुख्य बात थी उच्च फलन वाले बीजों, अधिक उर्वरकों और कीटनाशकों का इस्तेमाल। हरित क्रांति का लाभ यह हुआ कि अनाज का उत्पादन जो आजादी के वक्त के आंकड़ें 5 करोड़ टन से बढ़ते-बढ़ते 10 करोड़ टन पर आकर ठहर चुका था, वह फिर तेजी से बढ़ना शुरू हुआ और उसने 20 करोड़ टन की रेखा पार कर ली, लेकिन 1980 के दशक के बाद से हरितक्रांति भी संकट में फंस गई। इसका सुस्पष्ट संकेत इस बात से मिलता है कि उच्च फलन वाले बीजों से खेती अब भी देश के कुछ कर्षित क्षेत्र के मात्र 55 प्रतिशत रकबे तक ही पहुंच पाई थी और 1990 के दशक में इस रकबे में नगण्य वृद्धि हुई। आंकड़े बताते हैं कि 1970 में यह अनुपात 17 प्रतिशत था, अगले दस वर्षों में तेजी से बढ़कर 40.13 प्रतिशत पर पहुंचा, मगर उसके बाद अस्सी के दशक में इसकी वृद्धि घटने लगी और 1990 में यह अनुपात 52 प्रतिशत तक ही पहुंच सका। मगर इसके बाद के 10-15 वर्षों में तो उच्च फलन वाले बीजों से खेती किये जाने वाले रकबे के अनुपात में महज 3 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई है। इसके अलावा, कुल कर्षित क्षेत्र में सिंचित क्षेत्र के अनुपात में वृद्धि भी थम गई है। 1970 में जहां यह आंकड़ा 23 प्रतिशत था, वह 1980 में 33 प्रतिशत पर पहुंचा लेकिन उसके बाद से इसमें भी नगण्य वृद्धि हुई है। पिछले पांच वर्षों में यह केवल 1 प्रतिशत बढ़ा है।

1990 से भारतीय शासकों ने उदारीकरण और भूमंडीकरण की जो नीतियों लागू करनी शुरू की, उनसे हरित क्रांति के बाद उपजा संकट और भी बढ़ गया है। सिर्फ इतना ही नहीं, इन नीतियों ने संकट के किसी परंपरागत समाधान को असंभव बना दिया है। 1994 में हुए गैट समझौते के अनुसार 1 जनवरी, 1995 से डब्लू.टी.ओ विश्व व्यापार संगठन लागू हुआ। डब्लू.टी.ओ. ने जो 'कृषि पर समझौता' (Agreement on Agriculture) तैयार किया है, उसके पीछे अमेरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनी कारगिल का शातिर दिमाग है। उसके पूर्व उपाध्यक्ष डॉन एम्सटुज ने समझौते का प्रारूप लिखा था। बहुराष्ट्रीय देशी-विदेशी औद्योगिक एवं व्यवसायिक घरानों तथा समूहों का सपना है- 'किसानों द्वारा खेती' के स्थान पर 'कॉरपोरेट फार्मिंग' हो। वे यह तय करना चाहते हैं कि कहां-कहां किन-किन खाद्यानों और भोज्य पदार्थों का उत्पादन हो एवं इसके साथ ही, खाद्य पदार्थों के उत्पादन, वितरण, कारोबार या व्यापार पर कॉरपोरेट माफिया का पूर्ण नियंत्रण हो। डब्लू.टी.ओ. द्वारा 'कृषि पर समझौते' के माध्यम से रचे गये षड्यंत्र का पर्दाफाश करते हुए समकालीन कवि अष्टभुजा शुक्ल लिखते

हैं-''हम तो किसान सब जान रहे/हम इन अवतारी पौधों की माया नस-नस पहचान रहे/अनबोए उगे ये फसलों में, सब पानी खाद डकार लिये/बावनवीर हुए, हरियाली में जौ के मुंह मार लिये/अपनी मिट्टी तो दोमट है, रेतीली या मटियार नहीं/कुछ उगने पर प्रतिबंध नहीं, कुछ खनने पर तकरार नहीं/जब से हम होश संभाले हैं, इनसे ही पाला पडा हुआ/xxxx/हम इन्हेंचीन्हते हैं विधिवत्, हम उनकी औषधि जान रहे/खुरपे, कुदाल, हंसिए तक भी इनका रोआं पहचान रहे /xxxx/धोखे से राहु-केतु जैसे अमृत घट्घट् पी जाते हैं/xxxx/अक्सर बूढ़े हो जाते हैं, सारे भूपुत्र जवानी में/हरियाली ही हरियाली की बैरी कैसे बन जाती है/ यह किसी वेद में नहीं लिखा, यह खेती हमें बताती है/है अष्टभुजा भी सजग इधर,उमखजो। उगो तुम बार-बार/हम फसलों के रखवाले हैं, कर देंगे तुमको तार-तार।''[2]

देश के पेटेंट कानून पूरी तरह से बदले जा चुके हैं। डब्लू.टी.ओ. समझौते के बाद ये कानून खेती पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों की पकड़ मजबूत करने के लिहाज से बनाये गये हैं। इस नये कानून के तहत जिस तरह सरकार किसानों की जमीन छीनकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को देती जा रही है, उसका चित्रण करते हुए ए. अरविंदाक्षन लिखते हैं- 'हर रोज राजा/ धरती का चीरहरण करने लगे/ किसान देखते भर रह गये/ कोसों याजनाओं की धरती राजा ने छीनी/किसान रोते-कलपते रह गये/ विस्थापित किसानों को देख राजा अट्टाहास करते रहे/अपनी इस खुशी में उसने एक आदेश जारी किया/धरती सिर्फ राजा की होती है-/इसबात को लेकर/किसी का रोना-धोना,/भावुक होना/फुसफुसाना/शब्दों का अपव्यय करना/ कानूनन अपराध है।''[3]बहुराष्ट्रीय कंपनियों की साजिश यह है कि जिन जैविक पदार्थों का सृजन, उन्नयन या विकास प्राकृतिक विधियों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया के दौरान स्थानीय समुदायों या देशज लोगों के जरिये सदियों से होता चला आया है, उनसे बेदखल कर दिये जायें। नये बीज कानून से अब पुश्तैनी जैव संपदा पर किसानों का सामुदायिक, सामूहिक या सार्वजनिक हक नहीं रह पायेगा, बल्कि इस पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का अधिकार हो जायेगा। सिंजेटा, नोवार्तिस एवं मोंसैण्टो बीजों के सबसे बड़े पेटेण्टधारकों में से हैं। मोंसैण्टो भारत में जिस जी.एम. टर्मिनेटर (बांझ), बी टी फसलों या बीजों से हमारे खेतों को पाटने आया है, वह कॉरपोरेट फार्मिंग के बीज हैं और वे किसानों के लिए यमदूत हैं। जी.एम. फसलों के चलते किसान न केवल बुरी तरह से परावलंबी हो जाते हैं, बल्कि 'मोनोकल्चर' (किसी क्षेत्र विशेष में केवल एक फसल पैदा होने की स्थिति) को बेरोकटोक बढ़ावा मिलता है, जिसके परिणामस्वरूप नितांत आवश्यक खाद्य संप्रभुता का क्षरण होता जाता है।1988 से लेकर अब तक खाद्यान फसली खेती की संख्या 30 प्रतिशत घट गई है और लगभग 1,50,000 किसान परिवार खेत से गायब हो गये हैं।

मंडी कानून में भी ऐसे बदलाव किये जा रहे हैं जिससे बहुराष्ट्रीय कंपनियां किसानों से सीधे खाद्यानों और फल-सब्जियों की खरीददारी कर सकें। अपनी खेती लायक जमीन को किसान पट्टे पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को दे सके, ऐसी व्यवस्था नये मंडी कानून में की जा रही है। 'ठेके पर खेती' के लिए नया कानून रास्ता साफ कर रहा है। इससे नित्य प्रति उपयोग में आने वाले जीवनदायी भोज्य पदार्थों का रकबा घटता जायेगा। नकदी फसलों के जाल में किसान फंसेगा, जिससे हमारी खाद्य सुरक्षा गंभीर खतरे में पड़ जायेगी। किसान अपनी जमीन पर जिस बहुराष्ट्रीय कंपनी के लिए ठेके पर खेती करेगा, समझौते में उल्लिखित शर्तों के अनुसार, वह उस कंपनी अथवा उसके द्वारा चिह्नित कंपनियों से बीज खरीदेगा, उर्वरक और कीटनाशी रसायन खरीदेगा। साथ ही किसान अपनी उपज उस कंपनी को उसके द्वारा तय की गई कीमतों पर बेचने पर मजबूर होगा। अर्थात किसानों से खेती करने की सारी आजादी छीन ली गई। इस संदर्भ में एन. अरविंराक्षन की एक बहुत अच्छी कविता है जिसमें वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा किसानों पर किये जा रहे शोषण का चित्रण करते हैं-''किसानों को आजादी नहीं है/बीज बोने की/अपने खेतों के बचाने की/उन्हें पता नहीं/खेतों में वे ही/याने कुछ अजनबी लोग ही/विकास का बीज बो सकते हैं/किसान अनपढ़ हैं/उन्हें सिर्फ खेती बचाना आता है/विकास का बीज बोना नहीं आता है/अनपढ़ हैं वे/नए किस्म के बीजों की/उनके पास जानकारी नहीं है/उन्हें खेती बचाने की आजादी नहीं है।''[4]

विकसित देशों, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों एवं एजेंसियों द्वारा बहुपक्षीय मुक्त व्यापार समझौते के जरिये एक तरफ भारत समेत तमाम विकासशील देशों पर सब्सिडी खत्म करने के लिए लगातार भारी दबाव डाला जा रहा है, जबकि दूसरी तरफ विकसित देश अपनी खेती (एग्रीविजनेस कॉरपोरेश) में सब्सिडी का दायरा और आयतन घोषित-अघोषित तौर पर बढ़ाते जा रहा है। जिससे उसका कृषि-उत्पाद विश्वबाजारों में छा जाता है। वह इतना सस्ता पड़ता है कि देशज या स्थानीय किसानों द्वारा पैदा की जा रही उपज उनके सामने एकदम भी नहीं टिक पाती। इससे स्थानीय किसानों को भारी

आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। इस पर से अगर बाढ़ आ जाये या सूखा पड़ जाये तो किसान के दु:ख का अंत नहीं है। इसे झेल न पाने पर वे आत्महत्या की ओर उन्मुख होते हैं। ए. अरविवंदाक्षन लिखते हैं- 'सूखे के दौर में/ज़्यादा मुक्त होती नहीं है/बस, इधर-उधर/विदर्भ में था/आंध्र में/ कुछ किसान/ कभी अकेले/ कभी सपरिवार/अपने-अपने अंतर्मन में/निपट अकेले पड़ जाते हैं/निस्सहायता में/वे अपने-अपने अंधेरे में गिरफ्त हो जाते हैं/दूसरे दिन/लोग/अखबार/देश/ उसे आत्महत्या के खाते में/ निस्संग भाव से डाल देते हैं।''[5]

विकास के नाम पर हमारी खेती-किसानी पर चौतरफा मार पड़ रही है। कृषि-उत्पादों पर से मात्रात्मक प्रतिबंध हट चुके हैं। बाहर की सस्ती, सब्सिडीयुक्त और जेनेटिक इंजीनियरिंग से संशोधित-संवर्धित कृषि जिंसों और उनसे तैयार ढ़ेर सारीखाद्य-वस्तुओं की भारी मात्रा से हमारे किसानों को बेहद घाटा उठाना पड़ रहा है। कृषि क्षेत्र में उपज के लिए जिन-जिन चीजों का इस्तेमाल होता है, उन सबको बनाने के लिए देशी-विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को खुली छूट मिली हुई है। जिनके चलते किसान उनके मोहताज बने हुए हैं। बीज, उर्वरक, कीटनाशी, रसायन, कृषि उपकरण आदि सभी निवेश्य पदार्थ कॉरपोरेट घराने बना रहे हैं और इन सारी चीजों को वे मनमाने ढंग से खुद तय की गई कीमतों पर किसानों के हाथों बेच रहे हैं। डब्लू.टी.ओ. विश्वबैंक और आई.एम.एफ के निर्देशों पर किसानों को दी जा रहीसब्सिडी को हमारे यहॉ खत्म किया जा रहा है। बीज, खाद, पानी डिजल, कृषि उपकरण, बिजली आदि सभी वस्तुएं किसानों के लिए महंगी होती जा रही हैं। दरअसल हमारे यहॉ किसानों को दी जा रही समर्थन-सहायता ऋणात्मक है। इसीलिए तो एकांत श्रीवास्तवस्पष्ट कहते हैं-''पत्थरों की आग होती है/नदियों की आग नहीं होती/ पर तुमने लगाई नदियों से/हमारी बस्तियों में आग/अभी तक तो नहीं थेबड़े बांध/ फिर भी जी रहा था यह देश/ पी रहा था पानी/सींच रहा था अपने पौधों को/ जो बन ही जाते थे एक दिन पेड़/जल क्यों नहीं जाते इस आग में/रूपयेविश्व बैंक के/ जिन्हें लेकर आये ऋण में तुम/जिसके ब्याज से उऋण नहीं हो पायेगी/कई-कई पीढ़ियां/कैसी यह नीति विकास की/पाताल की ओर ले जाती हुई/खारिज करो विश्व-बैंक को/ऋण को,विकास-नीति को।''[6] कई मामलों में पहले किसान काफी हद तक स्वावलंबी हुआ करते थे। स्थानीय जैव संसाधनों, शिल्प, प्रविधियों और पद्धतियों पर वे आश्रित थे। देशी हुनरमंद कारीगरों से उनका अंतरंग संबंध था। सारा ढांचा परस्परावलम्बन पर टिका था। एक सुनियोजित षड्यंत्र के तहत केंद्रीकरण की व्यवस्था ने इस टिकाऊ, मजबूत और चिरंजीवी ढांचे को तहस-नहस किया।

जैसे-जैसे कृषि संकट गहराता जा रहा है, वैसे-वैसे किसान मौत को गले लगाते जा रहे हैं। 2006-08 के बीच केवल महाराष्ट्र में ही 12,493 किसानों ने आत्महत्या की। यह आंकड़ा 1997-1999 के आंकड़ों से 85 प्रतिशत अधिक है। किसी भी राज्य में तीन वर्षों के किसी भी अंतराल में इतने बड़े पैमाने पर आत्महत्याएं नहीं की गई थी। तबाही पांच बड़े राज्यों-महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में केन्द्रित है। 2003-08 के दौरान जितने किसानों ने आत्महत्याएं की थीं, उनमें से दो तिहाई किसान इन्हीं राज्यों से थे। एन.डी.टी.वी. का 29 फरवरी 2010 को दिया गया भयावह आंकड़ा यह है कि 13 साल में कुल 2 लाख 16 हजार किसानों ने आत्महत्याएं की। अकेले 2009 में 17000 किसानों ने आत्महत्याएं की। महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ किसानों के लिए कब्रगाह बन चुके हैं। परंतु यह तो सिर्फ आंकड़ा है। एक किसान की मृत्यु के साथ न जानने कितने लोगों की मौत जुड़ी होती हैं। कुमार अंबुज 'मृतकों की सूची' कविता में लिखते हैं-''मृतकोंकी इस सूची में कितनी कमनिगाही है/कितनी गलतियां और कितनी लापरवाही/जबकि सब जानते हैं इस संसार में/एक को मारने से एक नहीं मरता/चार छ: तो तुरंत ही मर जाते हैं और दस-बीस धीरे-धीरे।''[7]

किसान को अपनी धरती से, बैल से, हल से, लोगों से प्रेम है। इसी प्रेमवश वह धरती से श्रमपूर्वक अन्न उपजाता है। वह इन्हीं खेतों में जन्म लेता है, पलता-बढ़ता है और अंत में इसी मिट्टी में विलीन हो जाता है। यह मिट्टी उसके प्रेम, उसके संघर्ष, उसकी पीड़ा, उसकी व्याकुलता को अपने सीने में दबाये रखती है। सौरभ राय 'भगीरथ' अपनी कविता 'बी. टी. किसान' में लिखते हैं-'पुरातत्त्व विभाग को/ धरती के भीतर/ मिली एक खोपड़ी/ देखो ये किसान का सिर है/ घबराओ मत/ये जन्मजात कुरूप थे/ डायनासोर से भी अधिक कुरूप/ सदियों से भूखे नंगे परेशान/ ये थे जिनेटिकली मॉडिफाइड/ बी.टी. किसान/ सूंघो इस खोपड़ी को// शायद फसल की गंध आयेगी/फोरसेप से खोलो इसका मुंह/धीरे से/दांतों के बीच/तमाखू नहीं/डी.डी.टी. मिलेगा/और अगर भर दो इसे/अन्न से/तो आंख कान मुंह से झर कर/ तुम्हारी ही झोली में गिरेगा/गौर से देखो शायद मिल जाये/तुम्हें हड्डियों पर/ आंसुओं का निशान / ये थे भारतवर्ष के/जिनेटिकली मॉडिफाइड/बी.टी.

किसान।"[8]

1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में आत्महत्या का जो सिलसिला आरंभ हुआ, उसमें निरंतर इज़ाफा ही हुआ है। सच्चाई तो यह है कि तेजी से घटती कृषक आबादी के भीतर किसान बड़ी संख्या में अभी भी आत्महत्याएं कर रहे हैं। आत्महत्याओं का कारण बहुत साफ है। और वह है सदियों से पीड़ित किसानों को दिखाए गए भड़कीले समृद्धि के सपने। वास्तव में उन्हें कर्ज में फांसने का यह शिंकजा है, ताकि उसके पास जो जमीन, बीजों की विरासत, खेती की परंपरागत कुशलता है, उससे भी वह हाथ धो बैठे। महाजनों की गिरफ्त वाला बाजार इन पर अपना कब्जा जमाना चाहता है। इस तरह से इन सपनों के सौदागरों ने किसानों के सामने दो ही रास्ते छोड़े हैं या तो गुलामी या फिर मौत। सबसे बड़ी बात कि साजिशों का जाल इस तरह से बुना जाता है कि उसकी बारीकियों को आमतौर पर समझना भी मुश्किल होता है। एक तरफ किसान आत्महत्या कर रहा है, पर दूसरी तरफ बीज के व्यापारी विकसित होते जा रहे हैं, पेस्टीसाइट काडीलर महाजन के रूप में खड़ा हो रहा है। ऐसा तभी होता है जब सदियों से पीड़ित वर्ग को छलपूर्वक चारों तरफ से घेर लिया जाता है और जब वह अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष का रास्ता तैयार नहीं कर पाता, तो आत्महत्या की ओर अग्रसर होता है। हरीशचन्द्र पाण्डे अपनी कविता 'किसान की आत्महत्या" में लिखते हैं-"उन्हें धर्मगुरुओं ने बताया था प्रवचनों में/आत्महत्या करने वाला सीधे नर्क जाता है/तब भी उन्होंने आत्महत्या की/क्या नर्क से बदतर हो गई थी उनकी खेती/वे क्यों करते आत्महत्या/जीवन उनके लिए उसी तरह काम्य था/जिस तरह मुमुओं के लिए मोक्ष/लोकाचार उनमें सदानीरा नदियों की तरह/प्रवाहमान थे/ उन्हीं के हलों के फाल में संस्कृति की लकीरें/खिचीं चली आई थीं/उनका आत्म तो कपास की तरह उज्जर था/वे क्यों करते आत्महत्या/ वे तो आत्मा को ही शरीर पर वसन की तरह/बरतते थे/ वे जड़ें थे फुनगियां नहीं/अन्नदाता थे, विचौलिये नहीं/उनके नंगे पैरों के तलुवों को धरती अपनी संरक्षित/ऊर्जा से थपथपाती थी/उनके खेतों के नाक-नक्श उनके बच्चों कीतरह थे/वे क्यों करते आत्महत्या/ जो पितरों का ऋण तारने के लिए/भाषा-भूगोल के प्रायद्वीप नाप डालते हैं/अपने ही ऋणों के दलदल में धंस गये/जो आरुणि की तरह शरीर को ही भेड़ बना लेते थे/ मिट्टी का/जीवन-द्रव्य बचाने/स्वयं खेत हो गये/कितना आसान है हत्या को आत्महत्या कहना/और दुर्नीति को नीति।"[9]

'भूमंडलीय पूंजीवाद' और साम्राज्यवाद के नवीनतम रूप 'वैश्वीकरण' के इस दौर में पूरे विश्व को एक गांव में तब्दील करने की योजना तो है पर अपने देश में किसानों पर इन कुचक्रों की मार सबसे अधिक पड़ रही है। स्थिति यह है कि 'ग्लोबल गांव' से गांव की असली तस्वीर ही गायब है। किसानों की जमीनें बड़ी कंपनियों के लिए हड़पी जा रही हैं। 'खेत' शीर्षक कविता में लीलाधर मंडलोई लिखते हैं-"मैं हर बरस लौटता हूँ/धरती के इस टुकड़े पर/जहां ईंट के भट्ठे लगे हैं/पहले यहाँ मेरा खेत था।"[10] किसानों की आवाज बंद करने के लिए बंदूकें आग उगलने लगी हैं। हम भूले नहीं हैं नन्दीग्राम का भयावह ऐतिहासिक हादसा, जहां किसानों के प्रति सरकार का दमन चरम पर पहुंच गया था। एक तरफ यह कहा जा रहा है कि भारत उन्नति के शिखर की ओर बढ़ रहा है, विकास की बयार गांवों और गरीबों तक पहुंचने का दावा किया जा रहा है, तो दूसरी ओर किसानों की आत्महत्या की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। इस संदर्भ में लीलाधरमंडलोई यह कथन उल्लेखनीय है-"रूप की हाट में/गाये जाते हैं जो गीत/उनमें चिड़ियों के कराहने की/ आवाज सुनाई देती है।"[11] यानी किसानों ने यथावत् आत्महत्या की और देश की राजनीति इससे बेफिक्र बनी रही। लीलाधर मंडलाई की एक अन्य कविता है 'अपमान', जिसमें-"एक किसान और मर गया/इसे आत्महत्या कहना/अपमान होगा/मरने के समय/वह बैंक का दरवाजा खटखटा रहा था।"[12] बेशक यह आत्महत्या नहीं,हत्या है। एकांत श्रीवास्तव तो स्पष्ट कहते हैं—'उसने मिट्टी तेल छिड़ककर/ आग लगा ली/ वह झूल गया फंदे से/ उसने छलांग लगा दी गहरे जलाशय में/ खा लिया जहरमाहुर/ तो क्या अपने आत्म को हत्या तक/ ले जाने का जिम्मेवारवह खुद?/ /कभी आत्महत्या भी/हत्या की तरह देखी जानी चाहिए।"[13] बहरहाल, इस हत्या और आत्महत्या के प्रश्नों के बीच कवि प्रेमशंकर रघुवंशी का हस्तक्षेप है- "दिल्ली को जाने बिना/ इस देश को/ नहीं जाना जा सकता क्या?/जबकि हमारे क्षेत्र में/डूब को जाने बिना/ नर्मदा सागर में डूब गये सैकड़ों हरसूद/ भूख को जाने बिना/सतपुड़ा के वनांचलों से/भूखे भगाये जा रहे वनवासी/जान लेने से भी/कोई फ़र्क नहीं पड़ता बंधु!/जैसे कि पीढ़ियों से/किसानी कर्म जान लेने के बाद भी/खेतों की गोद में/आत्महत्या को मजबूर//होते जा रहे किसान।"[14] इसलिए वर्तमान समय में हत्या और आत्महत्या के कारणों का पता लगा लेने से भी कुछ फर्क पड़ने वाला नहीं है। किसान आत्महत्या करते जा रहे हैं पर किसी को इनकी परवाह तक नहीं है। स्थिति यह है कि एक तरफ भूमंडलीय

बाजार और कॉरपोरेट घरानों से जुड़ी वित्तीय संस्थाएं कर्ज दे-देकर निर्धन किसानों को लूट रही है तो दूसरी तरफ शासन व्यवस्था इन कंपनियों को रियायत पर रियायत दिये जा रही है। इस संदर्भ में लीलाधर मंडलोई की 'शर्मनाक' कविता उल्लेखनीय बन पड़ी है- ''मैं 1991 के अखबार में/ पढ़ रहा हूँ यह खबर/एक एकड़ कपास की/लागत 2500 रूपए/ और आज 2010 में/यह भयानक खबर/ कि विदर्भ में/किसान आत्महत्या को मजबूर/कि लागत/13,500 रूपए प्रति एकड़/ और खेत उदास/सरकार बी.टी. कपास के समर्थन में/ इस हद तक पागल/ कि भूल गई/ अपने खेत/ अपने किसान/यहॉ तक आत्महत्या के आंकड़ें/जो किसी भी सरकार के वास्ते शर्मनाक।''[15] ये वित्तीय संस्थाएं तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियां, जिस प्रकार से हमारी सरकार की नीतियों को अपने पक्ष में तोड़-मरोड़ कर अपने पैर जमाती चली जा रही हैं, वह हमें ईस्ट इंडिया कंपनी की याद दिलाती है।

III. निष्कर्ष

दरअसल, किसान की आत्महत्यासूक्ष्म–स्थूल, दृश्य-अदृश्य, साकार-निराकार शोषण के अनगिनत कारणों का निरंतर तनाव, दबाव और आतंक हैं। जिसे आज के निर्मम पूंजीवाद, बाजारवाद, भूमंडलीकरण और उपभोक्ता संस्कृति ने पैदा किया है। किसान देश का धड़कता हृदय है। किसान आत्महत्या तो कर लेता है, मगर मिट्टी के साथ चिपटकर ताउम्र जी लेने की इच्छा अधूरी रह जाती है। उसका शरीर तो असमय शांत हो गया, पर उसकी निर्दोष आत्मा अभी भी कराह रही है। फिर, किसान को उसकी जमीन से दूर कर देना मात्र खेती से दूर करना भर नहीं है, बल्कि उसे उसकी कृषि संस्कृति, उसकी परंपरा, उसकी विरासत, उसकी अस्मिता, उसके सपनों एवं उसके अपनों से दूर कर देना भी है—''यह एक व्यक्ति का चले जाना/और लौटकर आना भर ही नहीं है/यह तो चले जाना है/कई-कई पीढ़ियों का/अपने हल-बैल, भेड़-बकरी/जंगल-बुग्याल, गाड़-गधेरों को छोड़कर।''[16]

संदर्भ-

1.चौधरी राम आह्लाद(संपादक), 'स्वाधीनता', शारदीयविशेषांक, वर्ष-2010, पृष्ठ-323
2.शुक्लअष्टभुजा, 'पद-कुपद'(काव्य संग्रह), प्रथम संस्करण-2013, मानव प्रकाशन, कोलकाता, पृष्ठ-36
3.अरविंदाक्षन ए.,'पतझड का इतिहास'(कविता संग्रह),पहला संस्करण-2013, मानव प्रकाशन, पृष्ठ-36
4. वही, पृष्ठ-50
5. वही, पृष्ठ-20
6. श्रीवास्तव एकांत, 'धरती अधखिला फूल है'(काव्य संग्रह), प्रथम संस्करण-2013, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ- 126
7. कुमार अंबुज, 'अमीरी रेखा'(काव्य संग्रह), पहला संस्करण- 2011, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ-88
8. वर्मा अंजना(संपादक), 'चौराहा', जुलाई-दिसंबर, 2013, पृष्ठ-63-64
9. वही, पृष्ठ-26
10. मंडलोईलीलाधर, 'लिखे में दुक्ख'(काव्य संग्रह), प्रथम संस्करण-2013, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली,पृष्ठ-37
11. वही, पृष्ठ-80
12. वही, पृष्ठ-52
13. श्रीवास्तव एकांत, 'धरती अधखिला फूल है'(काव्य संग्रह), प्रथम संस्करण-2013, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ- 22
14. गंगोपाध्याय सुनिल, तिवारी विश्वनाथप्रसाद, कृष्णामूर्तिअग्रहार (संपादक मंडल), 'समकालीन भारतीय साहित्य', अंक-156, जुलाई-अगस्त-2011, पृष्ठ-223

15.मंडलोईलीलाधर, 'मनवाबेपरवाह'(काव्य संग्रह), प्रथम संस्करण-2011, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, पृष्ठ-30
16. प्रसाद कमला(प्रधान संपादक), 'प्रगतिशील वसुधा, अंक-1, अप्रैल-जून-2006, पृष्ठ-128

डॉ. विभा कुमारी
एसोसिएटप्रोफेसर
हिंदी विभाग
कल्याणी विश्वविद्यालय
कल्याणी, नदिया, पश्चिमबंगाल
मोबाईल:- 9903791335